प्रवचन नं. १८, गाथा-२०-२१ रविवार, दिनाङ्क ०३-०४-१९६६ (महावीर जयन्ती)
चैत्र शुक्ला १३, वीर संवत् २४९२

आज महावीर भगवान का जन्मदिवस है। चैत्र शुक्ल तेरस। उन्हें मोक्ष पधारे हुए २४९२ वर्ष हुए हैं। उससे पहले ७२ वर्ष पूर्व जन्म था। वे एक आत्मा थे, शरीर में रहे हुए आत्मा... यह शरीर है, वह जड़ और अचेतन है।

मुमुक्षु : कब ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी; कब क्या ? यह मिट्टी है। ये तो जड़ रजकण हैं। रूपी, परमाणु रंग, गंध, रस, स्पर्शवाले, अजीव, मूर्त तत्त्व, यह जड़ है। भगवान अन्दर आत्मा... यहाँ आत्मा को ही भगवान कहा जाता है। उसी की यह गाथा ठीक आज आयी है। आत्मा ज्ञानानन्द सच्चिदानन्दस्वरूप है। किरतचन्दभाई ! ये सब बातें दूसरे प्रकार की हैं तुम्हारी अपेक्षा।

यह भगवान, देह में रहा हुआ आत्मा सत् है। सत्.. सत्.. सत्.. अर्थात् किसी काल में नया बना है - ऐसा नहीं। अकृत्रिम है; और सत् होता है, वह कभी वर्तमान नाश नहीं होता और भविष्य में भी नाश नहीं होता। सत्, वह अनुत्पन्न और सत्, वह अविनाशी तत्त्व होता है, नाशरहित। ऐसा यह आत्मा, देह के रजकणों के परमाणुओं से पार स्वयं का स्वरूप शुद्ध आनन्दकन्द के कारण अनादि का यह तत्त्व है।

यह महावीर परमात्मा का आत्मा भी ऐसा ही अनादि का भटकता आत्मा था, परन्तु उन्होंने अपने आत्मा का, पूर्व भव में-इस भव से पहले, पूर्व भव में आत्मा का भान किया। ..कहा नहीं जाता कि 'सन्त बीज पलटे नहीं, भले युग जाए अनन्त।' सुना है या नहीं ? 'ऊँच-नीच घर अवतरो तो ए सन्त का सन्त।' पूर्व में इस देह में रहा हुआ आत्मा वर्तमान वीर परमात्मा का अवतार होने के पहले उनके आत्मा के पूर्व भव में देह के रजकण-रजकण से और अन्दर पुण्य-पाप के विकल्प-विकार वृत्ति है, उससे भिन्न यह चैतन्य है, इस स्वसंवेदन से पूर्व भव में इस आत्मा का साक्षात्कार-अनुभव किया था। समझ में आया ?

इस देह में रहा हुआ चैतन्य ज्ञानज्योति, ज्ञानसूर्य है। चैतन्य का सूर्य है, यह चैतन्य

सूर्य है और उसमें अनन्त आनन्द है। अभी कहेंगे, उस अन्तर स्वभाव में अनन्त आनन्द पड़ा है। उसका भान वीर आत्मा ने पूर्व में किया था। बाकी रहा हुआ जो पूर्णानन्द की प्राप्ति नहीं हुई, इससे उन्हें एक अन्तिम अवतार यह हुआ। इस अवतार में तीन ज्ञान आदि तो लेकर (आये थे)। मतिज्ञान की दशायें होती हैं, मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय और केवल - यह ज्ञान की दशायें होती हैं। यह सब अभी स्पष्टीकरण नहीं होता, थोड़ी-थोड़ी बात होती है। यह ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा चैतन्य की शक्ति की दशा के अंश पाँच प्रकार हैं। उनमें तीन प्रकार तो स्वयं लेकर आये थे। पश्चात् जब दीक्षित हुए, नग्न मुनि हुए, अत्यन्त बनवासी, शरीर में वस्त्र का एक टुकड़ा भी नहीं। अकेले आत्मध्यान में मस्त। सच्चिदानन्दस्वरूप शाश्वत् अन्दर ज्योत पूर्ण स्वभाव और आनन्द का कन्द, उसका अन्तर साधन करते-करते वह जो शक्तिस्वभाव से पूर्ण है, उसकी वर्तमान दशा में व्यक्तता पूर्ण दशा में हो गयी।

जैसे पीपर के दाने में चोसठ पहरी चरपराहट और हरा रंग अन्दर में पूर्ण अन्दर शक्तिरूप से पड़ा है। यह पीपर.. पीपर। पीपर कहलाता है न ? छोटी पीपर। वह तो इतनी छोटी। दृष्टान्त देते हैं। छोटी पीपर इतनी, बाहर में काली, अन्दर में हरी। बाहर में चरपराहट की अल्पता, अन्दर में चरपराहट की चोसठ पहरी पूर्णता। घिसे तब चोसठ पहरी होती है या नहीं ? वह कहाँ से आयी ? पत्थर में घिसने से आयी ? पत्थर में घिसने ओ आवे तो कोयला और कंकर घिस डालना चाहिए। प्राप्त की प्राप्ति है। उस पीपर के दाने में चोसठ पहरी चरपराहट का रस अन्दर शक्तिरूप से, सत्वरूप से, भावरूप से, स्वभावरूप से था। यह तो लॉजिक से बात चलती है। कहो समझ में आया या नहीं इसमें ?.. बात नहीं कुछ। परन्तु कभी इसका पता लिया नहीं कि यह क्या है ? समझ में आया ?

इस पीपर के दाने-दाने में इतना छोटा होने पर भी उसे घोंटने से चोसठ पहरी चपरपराहट का रस, रस व्यक्त-प्रगट होता है। वह प्रगट हुआ, वह कहाँ से हुआ ? पत्थर से हुआ ? उसकी वर्तमान दशा तो काली है और अल्प चरपराहट, बहुत अल्प चरपराहट है। अब वह चोसठ पहरी प्रगट व्यक्तता शक्ति में थी, वह प्रगटरूप हुई है। समझ में आया ? वह अन्दर में शक्तिरूप था हरा रंग और चरपराहट की पूर्णता चोसठ पहरी। अभी सौ पैसे का रुपया कहलाया, परन्तु अभी तक तो अपने चौसठ पैसे का था न ? चौसठ पैसे का

रुपया अर्थात् सोलह आने का रुपया। इसलिए सोलह आना कहो, पूर्ण कहो, रुपया कहो, पूरा कहो - सब शब्द एक (ही) है। इसी प्रकार इस पीपर के दाने में सोलह आना अर्थात् चोसठ पहरी चरपराहट पूरी-पूरी भरी थी। तब वह शक्ति में थी, वह व्यक्ति में / प्रगटता में आती है। अन्दर में न होवे तो बाहर में आवे नहीं। प्राप्त की प्राप्ति होती है। कुएँ में हो, वह होज में आता है। समझ में आया?

यहाँ तो समझ में आती है, इसकी पूरी वस्तु की बात है। अनन्त काल से इसने आत्मज्ञान ही नहीं किया। आत्मा क्या चीज़ है - उसके माहात्म्य बिना अनन्त काल से चौरासी लाख में भटक रहा है। ऐसा नरसिंह मेहता नहीं कहते? सुना है या नहीं? 'ज्यां लगी आत्मातत्त्व चिह्नयों नहीं, त्यां लगी साधना सर्व झूठी।' हाँ, तुम बोले। 'ज्यां लगी आत्मा तत्त्व चिह्नयो नहीं, त्यां लगी साधना सर्व झूठी, शु कर्युं तीर्थने तप करवा थकी, शु कर्युं सेवा ने जाप करवा थकी।' सब शून्य है - ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह बँधता है उसमें, पुण्य हो जरा, परन्तु आत्मा का कल्याण और जन्म-मरण के अन्त का अवसर (आवे ऐसा), आत्मा के भान बिना कभी तीन काल में होता नहीं। वह आत्मा; जैसे पीपर में चोसठ पहरी चरपराहट का स्वभाव पड़ा है, वैसे भगवान आत्मा में इस देह में (स्थित आत्मा में) (पूर्ण स्वभाव भरा है), परन्तु उसकी इसे कीमत नहीं। इन दुनिया की चीज़ों की कीमत करने जाता है। समझ में आया? ...भाई! वहाँ क्यों बैठे? यहाँ आओ यहाँ। दुनिया अपने चैतन्य की कीमत न करके दुनिया के दूसरे पदार्थों की कीमत करने में तल्लीन है। लो!

यहाँ मूल तत्त्व जो परमात्मा वीर जो महावीर हुए, वे हुए कहाँ से? उन्होंने पूर्व में आत्मज्ञान का भान किया। आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति है, शान्ति का पूरा सत्व है। पश्चात् वर्तमान में अन्तिम अवतार हुआ, वह इस चैत्र शुक्ल तेरस को। राजकुमार रूप से देह, देह (हुई) आत्मा तो अत्यन्त भिन्न था। वे पश्चात् मुनि होकर दिगम्बर नग्न मुनि हुए थे, वनवास में रहते थे। वे आत्मा को; जैसे उस (पीपर को) चोसठ पहरी घोंट-घोंटकर चोसठ पहरी शक्ति की व्यक्तता होती है; वैसे आत्मा में पूर्ण आनन्द और ज्ञान पड़ा है, उसे एकाग्रता के घोंटन से शक्ति में से पर्याय में-अवस्था में व्यक्त किया, उसका नाम आत्मा में केवलज्ञान दशा कही जाती है। समझ में आया? यह तो समझ में आये ऐसा है, हों! इसमें

कोई बहुत ऐसा नहीं है। परन्तु कभी इसने आत्मा क्या चीज़ है और आत्मा में क्या माहात्म्य है - उसका इसे अनन्त काल में विचार करने का अवसर ही मिला नहीं। यह होली पूरे दिन (कि) यह किया और यह छोड़ा और यह किया और यह छोड़ा। दुनिया की झंझट में चैतन्य भगवान सच्चिदानन्द रत्न पड़ा है, उसकी इसे खबर नहीं।

इन महावीर परमात्मा के अन्तिम अवतार में आज के जन्मदिवस का दिवस है। उसे मनाने का हेतु यह है कि जिन्होंने इस भव में पूर्ण आत्मा की प्राप्ति की है, उनका जन्मकल्याणक और जन्मदिवस कल्याणरूप से, मांगलिकरूप से कहे जाते हैं। बहुत से पिल्ले, श्वान और केंचुआ जन्मे और मरे, वैसे जगत के प्राणी अनन्तबार अनन्त अवतार में जन्मे और मरे हैं, परन्तु जिस जन्म में इस आत्मा की शक्ति की पूर्णता की दशा प्रगट की, वह उस अवतार को सफल और धन्य कहा जाता है। कहो, समझ में आया इसमें? इसलिए यह वीरजयन्ती का जन्मदिवस आज कहा जाता है। उन वीर प्रभु को अन्दर में तीन काल-तीन लोक का ज्ञान हुआ।

जैसे (पीपर में) चोंसठ पहरी शक्ति प्रगट हो गयी, वैसे आत्मा अन्दर जलहलज्योति ज्ञ-स्वरूप, ज्ञानस्वभाव (विराजता है)। शरीर, वाणी, मन पृथक्, वे तो मिट्टी-धूल हैं। अन्दर कर्म रजकण, जिन्हें प्रारब्ध कहते हैं, वे रजकण की अजीव-धूल हैं, भिन्न की भिन्न चीज़ है। अन्दर शुभ और अशुभ के भाव होते हैं - दया, दान, व्रत, भक्ति, सेवा का विकल्प उठता है, वह भी एक पुण्यरूपी शुभ विकार है। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग-वासना, काम-क्रोध की वृत्ति उठती है, वह पापरूपी वासना का विकार है। उस विकार के पीछे; जैसे छोटी पीपर में काली के पीछे पूरी चरपराहट और हरा रंग पड़ा है; वैसे विकार के पीछे भगवान आत्मा में पूर्ण आनन्द और ज्ञान का स्वभाव पूर्ण पड़ा हुआ है। उसे जिसने एक समय में, जिस भव में व्यक्त अर्थात् प्रगट किया, उन ऐसे परमात्मा वीर की यह जयन्ती कहने में आती है। इसका यह श्लोक भी आज ऐसा आया है, भाई! स्वसंवेदन। सहज आया है, हों! अपने पढ़ते-पढ़ते। इस पुस्तक का नाम इष्टोपदेश है। इष्ट-उपदेश—आत्मा को हितकारी उपदेश। केशुभाई! ऐसे आओ ऐसे। केशुभाई! यह तो ३१ वर्ष हुए न, यहाँ? यह आज ३२वाँ लगता है। यह ३२वाँ वर्ष लगता है। क्या कहते हैं, समझ में आया इसमें? यह सब सफलता आत्मा का भान और पहिचान करे तो सफल है। बाकी सब व्यर्थ है।

मलूकचन्दभाई! यह पाँच-पचास लाख मिले तो भी व्यर्थ है। यह पूर्व का पुण्य जल जाए, तब पैसा मिलता है। यह पैसा मिलता है, वह सोजिस (सूजन) है। उसमें आत्मा को कुछ लाभ नहीं है।

यहाँ तो आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मा है। ऐसे स्वरूप की जिसे पूर्ण प्राप्ति हो गयी, उनका आज वीर जन्म जयन्ती दिवस कहा जाता है। अब यह शलेक भी जरा आया है, देखो! वह श्लोक तो थोड़ा बोल लें।

दोहा – इस चिंतामणि है महत, उत खल टूक असार।
ध्यान उभय यदि देत बुध, किसको मानत सार।।२०।।

यह जरा श्लोक पूर्व में गया, उसका सार है। यह चिन्तामणि एक रत्न होता है। एक विश्वास का विषय है। एक चिन्तामणि पत्थर होता है। वह पुण्यवन्त हो, उसे हाथ में आता है। उस पुण्यवन्त को, हों! और वह चिन्तन करे, तद्नुसार होता है; तो कहते हैं कि जिसके हाथ में चिन्तामणि रत्न आया, वह चिन्ते क्या? उस खली का पुरानी खली का टुकड़ा मिले तो ठीक—ऐसे चिन्ते? या चिन्तामणि रत्न जिसके हाथ में आया, वह तो कोई करोड़ों और अरबों के बँगले और महल की इच्छा करता होगा? या सड़े हुए खली के टुकड़े की इच्छा करता होगा? यह तो दृष्टान्त है, हों!

इसी प्रकार यह भगवान आत्मा अन्तर आनन्दकन्द सच्चिदानन्दस्वरूप है। कहते हैं कि इसकी एकाग्रता के अन्दर ध्यान करने से जो चिन्तामणि रत्न-आत्मा प्राप्त हुआ, वह अन्तर की एकाग्रता के आनन्द से (प्राप्त हुआ)। भगवान आत्मा जैसे यह विकार परिणाम करता है तो वह दुःख है। शुभ-अशुभ जो विकल्प करता है न? वह विकार है, वह दुःख है, वह आनन्द नहीं। आत्मा का आनन्द उस पुण्य-पाप के विकल्प के पीछे सच्चिदानन्द -यह सत्, ज्ञान और चित् अर्थात् ज्ञान, आनन्द अर्थात् अतीन्द्रिय आनन्द का आत्मा में रस पड़ा है। उस अतीन्द्रिय आनन्द के रस का स्वाद जहाँ आवे, ऐसे धर्मी को कहते हैं कि चिन्तामणि हाथ आया। ऐसे आत्मा को अन्तर में सच्चिदानन्द सत्... सत... सत्... सत्... शाश्वत् ज्ञान और आनन्द, ऐसा चिन्तामणि रत्न जिसकी दृष्टि में आत्मा पड़ा। वह पत्थर नहीं अब, उस पत्थर का दृष्टान्त था, वह पत्थर चिन्तामणि मिला होवे तो खली के टुकड़े को इच्छे, ऐसा नहीं होता। वह तो कहे, करोड़ रुपये होओ, धूल होओ। वह तो धूलवाला

धूल ही माँगे न, दूसरा क्या माँगे ? यहाँ आत्मा में एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्णानन्द प्रभु, ऐसा चिन्तामणि रत्न जिसे दृष्टि में, प्रतीति में, अनुभव में, वेदन में आया, ऐसा जीव आत्मा की शान्ति के समक्ष उस स्वर्ग के सुख और सेठपने के सुख को खली का टुकड़ा, सड़ा हुआ टुकड़ा जैसा, उसकी भावना उसे नहीं होती। समझ में आया ? नटुभाई ! इतना जरा **ध्यान उभय यदि देत बुध,..** आत्मा का आनन्द...

वस्तुस्वरूप प्रभु ! वस्तु पदार्थ है न ? अरूपी परन्तु वस्तु है न ? अरूपी भी पदार्थ है न ? अरूपी समझ में आया ? आत्मा में रंग, गन्ध, रस, स्पर्श नहीं है, इसलिए अरूपी है। यह मिट्टी, रंग, गन्ध, स्पर्श है। प्रभु ! आत्मा में रंग, गन्ध, रस, स्पर्श नहीं है क्योंकि वह तो जड़ को होता है, आत्मा को वह नहीं होता, परन्तु है वह रंग, गन्ध, रस, स्पर्श बिना की वह चीज़ है, वस्तु है, पदार्थ है, महान चैतन्य ज्योत है। जिसमें अनन्त-अनन्त बेहद ज्ञान और आनन्द पड़े हैं, ऐसा आत्मा जिसे कहते हैं कि सम्यक् अन्तर में अनन्त काल में भान नहीं हुआ और भान हो, वह जीव उस आत्मा की शान्ति माँगे या वह जीव उस स्वर्ग का सुख माँगे ? क्या चाहे ? शान्ति चाहे। अन्तर की शान्ति। धूल का टुकड़ा और यह पैसा, स्त्री, पुत्र और ऐसी धूल तो अनन्त बार मिली है। करोड़ों रुपये और अरबोंपति अनन्त बार हुआ है परन्तु अभी भिखा को-भिखारी को ऐसा लगे मानो पाँच लाख मिले तो मानो आहाहा. ! धूल भी हुआ नहीं, सुन न ! समझ में आया ?

भाई ! तू आत्मा प्रभु तू अनादि का है। अनादि का है तो आत्मा के भान बिना तूने अनन्त भव किये हैं। अनादि का है या नहीं ? या उसकी आदि है ? तब कहाँ रहा अभी तक ? आदि नहीं। है, है और है तो रहा कहाँ ? मुक्ति हुई है इसकी ? मुक्ति होने के (बाद अवतार नहीं होता)। घी होवे उसका मक्खन फिर से होगा ? मक्खन का घी होता है। इसी प्रकार आत्मा के आनन्द की प्राप्ति की मुक्ति हुई होवे तो फिर से अवतार नहीं होता। अतः यह अनन्त काल से भटकता है तो अवतार है इसे अनादि काल के। ढ़ोर के, मनुष्य के, रंक के, राजा के, स्वर्ग के, नरक के। नीचे नारकी हैं, हों ! कल्पना नहीं है। अभी कुछ सब सिद्ध नहीं किया जाता। नीचे नारकी जीव है। बहुत पाप करे न, शराब (पीवे), माँस खावे, उसके भोगने के लिये नीचे उसके स्थान सात स्थल हैं। एक-एक नरक में असंख्यात नारकी अभी हैं। वह अनादि के हैं, कोई नये नहीं हैं। मरकर यहाँ आवे और जाये, ऐसा

का ऐसा हुआ करता है। ऐसे अवतार में उसने अनन्त अवतार में अनन्त भव किये, उसमें क्या नहीं मिला इसे? स्वर्ग मिला, पैसा मिला, रंकता मिली, राज्य मिला, सब मिला है; एक आत्मा का अन्तरज्ञान सच्चिदानन्दस्वरूप को इसने प्राप्त नहीं किया। समझ में आया?

यह कहते हैं कि जिसे आत्मा का भान होता है, उसे तो चिन्तामणि रत्न मिला। वह तो अन्दर आनन्द की ही भावना करता है। एकाग्र होकर शान्ति, शान्ति का सागर आत्मा है। बात यह है कि उसकी कीमत नहीं है। एक दृष्टान्त दिया था, उस मोती का दृष्टान्त, भाई! दिया था न एक बार? एक मोती नहीं होता? मोती होता है, वह उच्च मोती। अभी मोती तो (साधारण हैं)। शास्त्र में तो ऐसा आता है, एक नींबू पकता है न? नींबू, नींबू के अन्दर एक माणिक पकता है। बीस-बीस हजार रुपये का, हों! एक माणिक। नींबू में, हों! नींबू में। यह तुमने नहीं सुना होगा, शास्त्र में है और अभी प्रत्यक्ष हो गया है। नींबू होता है न? उसमें कोई पुण्यवन्त प्राणी हो तो उस नींबू में वह बीज पके न उसके बदले माणिक पकता है। बीस-बीस हजार का, भाई वीरजीभाई कहते थे। कहाँ गये? ऐई! ये रहे, इनके पिता हैं। कान्तिभाई! वीरजीभाई कहते थे। वीरजीभाई, अभी ९५ वर्ष में गुजर गये।

मुमुक्षु : दृष्टान्त देते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, हाँ। स्वयं मुझे कहा था न मैं कलकत्ता गया था, तब एक माणिक था बीस हजार का। नींबू में से बीज की जगह माणिक पका। वह बीस हजार का कहते थे वीरजीभाई। इनके पिताश्री, ९५ वर्ष में अभी गुजर गये। इस फाल्गुन शुक्ल तीन। मुझे तो दूसरा कहना है अन्दर, कि उस नींबू के बीज में माणिक पके। बहुत कीमत का, बहुत कीमत की चीज़। समझ में आया? परन्तु फिर भी उसकी कीमत आत्मा के लिए क्या? समझ में आया? ऐसे नींबू के बीज में पके माणिक, जिसका पुण्य हो, उसे मिले। ऐसा जिसका पुण्य हो, उसे यह पैसा आदि मिले, परन्तु उसमें आत्मा को कुछ नहीं मिलता। समझ में आया? उस आत्मा में यहाँ कीमत चाहिए। मोती की कीमत का दृष्टान्त देते हैं, यह हीरा का कहा न?

एक सेठ था। मोती बहुत ऊँचा होता है, भाई! एक-एक मोती अभी वहाँ एक श्रवणबेलगोला है... क्या कहा? मूढ़बिद्री, मूढ़बिद्री में सैंतीस प्रतिमाएँ हैं। करोड़-करोड़ रुपये की एक-एक। एक करोड़ की! पचास लाख की तो एक इतनी एक मूर्ति है। हम

देख आये हैं और बड़ा झबेरी हमारे साथ में थे। पूछा था कि इसकी कीमत (क्या) ? कि कोई ले नहीं-दे नहीं, चोरे नहीं। चोरकर कहाँ डाले ? कोई इसे ले नहीं। बड़ी-बड़ी कीमत की चीज़ें। पहले के अरबोंपति थे। उसमें एक-एक मोतियों की मूर्ति है। मोती की मूर्ति, हों ! एक-एक।

वह मोती बहुत ऊँचा था एक सेठ के पास। उगाही करने गया, उगाही। गाँवों में पहले उगाही थी न, भाई ! दरबार ! उगाही करने गया तो फिर किसान के घर में गया। वहाँ खाट बिछा दी। आओ.. आओ.. सेठ ! तब तो पानी-बानी नहीं पीते थे न। अब तो सब समान हो गया है न ! पहले नहीं पीते थे। किसान के घर में डाली खाट और (कहा), पटेल ! पानी ले आओ। ब्राह्मण के यहाँ से पानी लेने गया, वहाँ एक नींबू पड़ा था ऊँचा मोतिया। कहा न ? ऊँचा। पड़ा हुआ। पानी (आने में) देर लगी वहाँ खोलकर ऐसे देखने लगा। वहाँ पटेल पानी लेकर आया (उसने कहा), पटेल ! इसमें पानी बहुत है। मोती में पानी ऐसे झलक मारता है न ! झलक। यह वह वस्त्र नहीं होता ? क्या कहलाता है वह ? दरियामोजा, ऐसे-ऐसे दिखता है। लहरें कुछ नहीं होती, दिखाब ऐसा होता है, यह लहरें उठे न, ऐसे मोती में ऐसी चमक की लहरें उठे, बहुत लहरें उठे। वे उठे इसलिए जरा पटेल को कहा कि इसमें पानी (बहुत है)। सेठ ! पानी किसलिए मँगाया था ? इसमें पानी होवे तो मँगाया किसलिए ? बनिया भी जरा ठग था न, तो कहा, पटेल ! इसमें तो समुद्र भरा है। चमक मारे न ! चमक.. चमक.. चमक.. बड़ी कीमत का। इसमें तो समुद्र भरा है। अरे ! सेठ गप्प मारते हो बड़े सवेरे, वहाँ समुद्र भरा था तो फिर लाओ मेरा पछेड़ा है न ? छोर स्पर्श कराकर (देखूँ) गीला होवे तो मानूँ। केशूभाई ! अरे ! पटेल उस पानी की कीमत इस पछेड़ी से नहीं होती। उस मोती के पानी की कीमत तो नजर से होती है। यह कहाँ गप्प मारी तूने ?

मोती में जो पानी है, उसका तेज है, उसकी कान्ति और उसकी झलक है, वह तो जिसकी नजरों में उसकी कीमत होती है, वह निर्णय करे। कोई कपड़े की पछेड़ी से (उसकी कीमत नहीं होती)। पानी कहता हूँ तो वहाँ पानी भरा है ? उसका तेज, उसकी कान्ति, उसकी चमक, उसका सामर्थ्य इतना सतत झलकता है कि समुद्र उछलता हो, वह पानी। वह तो नजर से परखा जाता है, वह पछेड़ी से नहीं परखा जाता।

इसी प्रकार भगवान आत्मा यह चैतन्यमूर्ति देह में रहा हुआ आत्मा, इसकी कीमत नजर से परखी जाती है। बाहर के क्रियाकाण्ड और शरीर में धूल से करके मर गया कुछ परखा नहीं। लाओ, मैं थोड़ी क्रिया करूँ, मुझे भगवान दिखता है या नहीं? क्या दिखे वहाँ? समझ में आया? कोई दया, दान, व्रत परिणाम करें, वह तो पुण्यराग है। उसकी कीमत से आत्मा ज्ञात हो, ऐसा नहीं है।

आत्मा यहाँ कहते हैं, देखो! स्वसंवेदन। पहला श्लोक पड़ा है। नटुभाई! है? स्वसंवेदन। २१वाँ श्लोक है और पहला शब्द यह है। यह भगवान आत्मा... वीर प्रभु हुए, उन्होंने आत्मा को वेदन कर, आनन्द से पूर्ण प्राप्ति की, ऐसा ही उपदेश जगत को कहा वाणी द्वारा, ओम ध्वनि द्वारा। उन्हें इच्छा नहीं होती, ओम आवाज / ध्वनि खिरती है। जगत के प्राणी अपने हित के लिए समझ लें, उसमें यह उपदेश आया कि हे आत्मा!

अब वह शिष्य जिसे समझाये जाने से श्रद्धान उत्पन्न हो रहा है, पूछता है कि जिसे आपने ध्यान करने योग्यरूप से बतलाया है, वह कैसा है? उस आत्मा का क्या स्वरूप है? आचार्य कहते हैं –

स्वसंवेदनसुव्यक्तस्तनुमात्रो निरत्यय:।
अत्यंतसौख्यवानात्मा लोकालोकविलोकन:।।२१।।

अर्थ – आत्मा लोक और अलोक को देखने जाननेवाला, अत्यन्त अनन्त सुख स्वभाववाला, शरीरप्रमाण, नित्य, स्वसंवेदन से तथा कहे हुए गुणों से योगिजनों द्वारा अच्छी तरह अनुभव में आया हुआ है।

विशदार्थ – जीवादिक द्रव्यों से घिरे हुए आकाश को लोक और उससे अन्य सिर्फ आकाश को अलोक कहते हैं। उन दोनों को विशेषरूप से उनके समस्त विशेषों में रहते हुए जो जानने–देखनेवाले हैं, वह आत्मा है। ऐसा कहने से 'ज्ञानशून्यचैतन्यमात्रमात्मा' ज्ञान से शून्य सिर्फ चैतन्यमात्र ही आत्मा है, ऐसा सांख्यदर्शन तथा 'बुद्धयादिगुणोज्झित: पुमान्' बुद्धि सुख दु:खादि गुणों से रहित पुरुष है, ऐसा योगदर्शन खण्डित हुआ

समझना चाहिये। और बोद्धों का 'नैरात्म्यवाद' भी खण्डित हो गया। फिर बतलाया गया है कि 'वह आत्मा सौख्यवान् अनंत सुखस्वभाववाला है'। ऐसा कहने से सांख्य और योगदर्शन खण्डित हो गया। फिर कहा गया कि वह 'तनुमात्रः' 'अपने द्वारा ग्रहण किये गये शरीर-परिमाणवाला है'। ऐसा कहने से जो लोग कहते हैं कि 'आत्मा व्यापक है' अथवा 'आत्मा वटकणिका मात्र है' उनका खण्डन हो गया। फिर वह आत्मा 'निरत्ययः' 'द्रव्यरूप से नित्य है' ऐसा कहने से, जो चार्वाक यह कहता था कि 'गर्भ से लगाकर मरणपर्यन्त ही जीव रहता है,' उसका खण्डन हो गया।

यहाँ पर किसी की यह शंका है कि प्रमाणसिद्ध वस्तु का ही गुणगान करना उचित है। परन्तु आत्मा में प्रमाणसिद्धता ही नहीं है – वह किसी प्रमाण से सिद्धनहीं है। तब ऊपर कहे हुए विशेषणों से किसका और कैसा गुणवाद? ऐसी शंका होने पर आचार्य कहते हैं कि वह आत्मा 'स्वसंवेदन-सुव्यक्त है,' स्वसंवेदन नामक प्रमाण के द्वारा अच्छी तरह प्रगट है। 'वेद्यत्वं वेदकत्वं च।'

'जो योगी को खुद का वेद्यत्व व खुद के द्वारा वेदकत्व होता है, बस, वही स्वसंवेदन कहलाता है। अर्थात् उसी को आत्मा का अनुभव व दर्शन कहते हैं। अर्थात् जहाँ आत्मा ही ज्ञेय और आत्मा ही ज्ञायक होता है, चैतन्य की उस परिणति को स्वसंवेदन प्रमाण कहते हैं। उसी को आत्मानुभव व आत्मदर्शन भी कहते हैं। इस प्रकार के स्वरूपवाले स्वसंवेदन-प्रत्यक्ष (जो कि सब प्रमाणों में मुख्य या अग्रणी प्रमाण है) से तथा कहे हुए गुणों से सम्पूर्णतया प्रकट वह आत्मा योगिजनों को एकदेश विशदरूप से अनुभव में आता है।'।।२१।।

दोहा – निज अनुभव से प्रगट है, नित्य शरीर-प्रमान।
लोकालोक निहारता, आतम अति सुखवान।।२१।।

गाथा - २१ पर प्रवचन

स्वसंवेदनसुव्यक्तस्तनुमात्रो निरत्ययः।
अत्यंतसौख्यवानात्मा लोकालोकविलोकनः।।२१।।

यह २१वाँ श्लोक है, इष्टोपदेश। **अर्थ – आत्मा लोक और अलोक को देखने**

जाननेवाला,.. ऐसा कहा पहले। भगवान आत्मा..! यह जगत चौदह ब्रह्माण्ड, इसके अतिरिक्त खाली भाग है। खाली भाग, समझ में आया? यह भरा हुआ जो है न? यह सब दिखता है, वह असंख्य योजन के माप में है, पश्चात् खाली.. खाली.. खाली.. है या नहीं? या कहीं उसका (अन्त है)? विचार भी किया नहीं कभी। यह सब भरा हुआ है न ऐसा और ऐसा, फिर कहाँ तक ऐसा होगा? पश्चात् खाली है। असंख्य योजन, असंख्य योजन के पश्चात् खाली है। फिर खाली का अन्त कहाँ? खाली.. खाली.. खाली.. खाली.. खाली.. खाली.. जिसे शास्त्रकार अलोक कहते हैं। कहीं अन्त नहीं परन्तु वहाँ अन्त आवे तो फिर क्या? श्रीचन्दजी! कौन जाने कहाँ निवृत्ति है?

यह वस्तु है या नहीं? यह चौदह ब्रह्माण्ड देखो! है या नहीं यह? जड़-चैतन्य का संग्रहात्मक। यह चीज़ कोई अनन्त योजन में नहीं, असंख्य योजन में है। असंख्य योजन अर्थात् एक योजन दो हजार कोस का। असंख्य योजन लम्बा, चौड़ा। परन्तु बाद में क्या? अनन्त.. अनन्त.. योजन, अनन्त कोस.. अनन्त कोस.. अनन्त कोस.. चले जाओ परन्तु बाद में क्या? इसके पश्चात् खाली भाग है। खाली जिसे अलोक कहते हैं, जिसमें यह जड़-चैतन्य कोई नहीं है। आकाश है। इन अनन्त दसों दिशाओं में अपार... अपार.. अपार..

यहाँ कहते हैं कि उस अपार आकाश को और इस लोक के भाग को भी यह आत्मा जानने की ताकतवाला है। आहाहा! अभी किसे अलोक कहना, यह विचार नहीं किया होगा। महेन्द्रभाई! निवृत्ति नहीं मिलती। इन इन्द्रियों के विषय और भोग और खाने-पीने के कारण यह चैतन्य कौन है, उसे (पहिचानने को) निवृत्ति नहीं मिलती। मर जाये, तब निवृत्त होगा। अब कुछ विचारा हुआ काम नहीं होता।

कहते हैं ओहोहो! कैसा है आत्मा? स्वसंवेदनं। स्वयं अपने से वेदन में आवे अर्थात् ज्ञात हो ऐसा है। ज्ञान से ज्ञान ज्ञात हो ऐसा है। वह ज्ञान, राग से ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। पुण्य-पाप के विकल्प से ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। इस शरीर की जड़ की क्रिया से ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। ज्ञान से ज्ञान ज्ञात हो, ऐसा वेदन। आत्मा शान्त अनाकुलस्वरूप, अरूपी चैतन्यधाम, वस्तु अरूपी, स्वरूप अरूपी स्वरूप, महान अरूपी पदार्थ अनन्त शान्तरस का कन्द है। उसे अन्तर में राग और विकल्प की दशा के लक्ष्य को छोड़कर, भगवान

आत्मा ज्ञानप्रकाश की मूर्ति है, ऐसे चैतन्य के, चैतन्य के अंश के द्वारा वह 'यह आत्मा' ऐसा ज्ञात होनेयोग्य है। ऐसा इसने अनन्त काल में कभी किया नहीं। समझ में आया? हमारे तो यहाँ आत्मा की बात है। यहाँ कोई दूसरी धूल की या फूल की नहीं। यह सब पैसेवाले तो यहाँ बहुत आते हैं। उन पर तो डण्डा पड़ता है। कितने ही तो ऐसा कहते हैं महाराज के पास पैसे हैं, (वहाँ) जायें, वे सब पैसे होते हैं। केशुभाई! लोग बातें करते हैं। यहाँ हमारे पास पैसा है? हमारे पास यह आत्मा है। कहो, समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं भगवान! यह आत्मा... यहाँ तो भगवान आत्मा को कहते हैं, हों! तू भगवान है, भाई! तेरी महिमा का पार नहीं, भाई! वचन द्वारा नहीं कही जा सके, ऐसी तेरी ताकत है। वह आत्मा स्वसंवेदन अपने से वेदन से जाना जा सके, ऐसा सुव्यक्त है। पण्डितजी! यह व्यक्त शब्द उसे लागू पड़ा है न? **स्वसंवेदनसुव्यक्त..** भाई! सुव्यक्त है, ऐसा कहते हैं। जरा शान्ति से (सुनो)। भगवान आत्मा ऐसा अन्तर चैतन्य का कन्द अरूपी आनन्दघन वस्तु है। सच्चिदानन्द है न? सत्, चिद् और आनन्द। चिद् अर्थात् ज्ञान और आनन्द। ज्ञान और आनन्द का भण्डार पूर्णानन्द वस्तु। वह स्वयं स्वसंवेदन से सुव्यक्त है। कोई कहे कि वह कैसे ज्ञात हो? उसका कोई प्रमाण? कि हाँ।

यह कहते हैं कि यह प्रमाण उसका यह भाई (कि) जिस चीज़ में ज्ञान और आनन्द है, उसे उसके ज्ञान और आनन्द द्वारा वह प्रगट ज्ञात हो ऐसी है। बाहर के क्रियाकाण्ड, शरीर, वाणी, मन की, दया, दान, व्रत के परिणाम से भी वह ज्ञात हो और अनुभव हो, ऐसा नहीं है। इसलिए पहले कहा 'जां आत्मा तत्त्व चिह्नयो नहीं' बाहर के पुण्य-पाप करे वह सब बाहर में भटके। पुण्य से तो यह स्वर्ग और धूल मिलेगी, पाप से नरक और ढोर (गति) मिलेगी। बाकी आत्मा के भव के अन्त का उपाय इस आत्मा के भान बिना कोई दशा इसकी कला है नहीं।

यह यहाँ कहते हैं। **स्वसंवेदनसुव्यक्त..** क्या कहा? सुव्यक्त। **स्वसंवेदन से तथा कहे हुए गुणों से योगिजनों द्वारा अच्छी तरह अनुभव में आया हुआ है।** भाई! आत्मा है न? एक जगत की घी जैसी चीज़, परन्तु खाने के भानवाला हो, उसे ख्याल में होता है कि यह घी का स्वाद, गाय के घी का (स्वाद), उसमें मागसर महीने के प्रातःकाल का

तबे का ताजा घी, सवेरे के तवे का ताजा, ख्याल में हो उसे कि यह मिठास है परन्तु कह सकने को कोई उदाहरण नहीं। श्रीचन्दजी! कहो, दृष्टान्त दो। सब लड़कों को दृष्टान्त होवे तो दो। घी का स्वाद कैसा होता है? बताओ। जन्म से मिला है न, बापू! उसे यह क्या कहलाता है? जन्मता है, तब देते हैं न? जन्मघुटी, जन्मघुटी। हिन्दुस्तान में क्या कहते हैं? जन्मघुटी कहते हैं। हिन्दुस्तान में उसे जन्मघुटी कहते हैं। जन्मे तब देवे न। छह महीने का कुछ अन्दर हो और निकल जाये। वह जो घी जन्म से मिला है, जन्मघुटी से मिला है, उसे साठ-साठ वर्ष तक अनुभव किया परन्तु कहने की ताकत किसी पदार्थ को तुलना करके उसमें है नहीं कि भाई इसके जैसा। वह घी कैसा? मीठा। बहुत मीठा मिश्री जैसा? नहीं वह नहीं, मिश्री जैसा नहीं। तब केले जैसा? नहीं वह नहीं। तब घीतेला जैसा? घीतेला होता है न? तालाब में होता है। उस घीतेला जैसा? स्वाद ऐसा नहीं है परन्तु कह न तब कैसा? कि वह कहा जाये ऐसा कुछ लगता नहीं। तथापि वह जानने में नहीं है - ऐसा है? कह नहीं सकता परन्तु जानने में नहीं है, ऐसा है? जानने में होने पर भी कहने में किसी पदार्थ को मिलान-करके तुलना करके कहना ऐसी ताकत नहीं है। जब जगत के ऐसे साधारण घी जैसे पदार्थ कि जो स्थूल, मिट्टी-धूल है, घी तो धूल है या क्या है? धूल है, वह तो मिट्टी है। घी खाये और विष्टा हो। छह घण्टे में विष्टा हो जाये। विष्टा होकर निकलकर राख हो जाये, राख के गेहूँ हों, गेहूँ का आटा हो... ऐसे जगत चला ही करता है, तो जो मिट्टी जैसे घी के स्वाद का ख्याल महाविद्वान विचक्षण बड़ा पण्डित हो, बेरिस्टर हो, ऐई! यह बड़े वकील हैं, लो! कहो, दे सकते हो? वकील के कानून कैसे निकालते हो वहाँ? ऐ.. कनुभाई! यह कनुभाई जज हैं, लो! यह दिया नहीं जाता इसका अर्थ बापू! ऐसा है प्रभु!

तेरी चीज़ ही कोई ऐसी है कि अन्तर में आनन्द का वेदन करने जाये तो वह ज्ञात हो ऐसी चीज़ है। बाकी बाहर के किसी उपाय से वह चीज़ ज्ञात हो और जानकर तू किसी को कह सके कि ऐसी चीज़ है। ऐसी वह उपमा योग्य चीज़ नहीं है। समझ में आया?

इसलिए यहाँ शब्द कहा - स्वसंवेदन सुव्यक्त। भगवान! प्रभु तेरा स्वरूप ऐसा है- प्रमाण सिद्ध है, हों! तू गप्प मारना नहीं कि नहीं नहीं ऐसे ज्ञात नहीं होता, यह कुछ खबर नहीं पड़ती और वह किसी ने जाना नहीं, ऐसे रहने देना-ऐसा कहते हैं। धर्मी जीवों ने अन्तर आत्मा को राग की क्रिया के परिणाम से, देह और जड़ से भिन्न उन्होंने जाना है—

यह आत्मा। योगी अर्थात् स्वरूप में जुड़ान करनेवाले। योगी अर्थात् बाबा हो जाये और योगी हो ऐसा कुछ नहीं है। योगी अर्थात् आत्मा के शुद्धस्वरूप में एकाग्र हो, उसे योगी कहा जाता है। योगी अर्थात् जोड़ना। जुड़ान-जुड़ान होना। नटुभाई! आहाहा!

भाई! इस देह में, मिट्टी के पिण्ड में प्रभु! अरूपी चैतन्यघन विलास करता हुआ आत्मा है। उसका तुझे सुव्यक्तपना कब होगा? मैं अन्दर में ज्ञानस्वरूप हूँ। उस ज्ञान का कण जो यह चैतन्यघन यहाँ है, वह ज्ञान हूँ, ऐसा जहाँ अन्तर में पकड़े तो इस राग, विकल्प, मन, वाणी, देह से अतीत / पार ऐसे चैतन्य को अन्तर्वेदन द्वारा जाना जा सकता है, प्रगट जाना जा सकता है, प्रगट ख्याल में आवे, ऐसा वह प्रमाणशील भगवान आत्मा है। समझ में आया? ऐ.. पोपटभाई! आहाहा! बाहर की बात कितनी प्रत्यक्ष करते हैं? ऐसा है और उसमें सुख है। प्रत्यक्ष देखना है न धूल में! ऐसे पचास लाख की पूँजी धूल की, यह और उसमें यह मजा, मोटर चलावे उसमें सुख। लाख-लाख की मोटर आती है या नहीं? धूल है। क्या है उसमें? तेरा राग का वेदन है वहाँ। वह कोई चीज़ भोगी नहीं जाती। वह तो जड़ है, मिट्टी है। मिट्टी भोगी जाए यहाँ? उसे देखकर राग करता है-यह ठीक, ऐसे राग को वेदता है। पर को यह आत्मा अनुभव करे, यह तीन काल में नहीं होता। वह जड़ है, वह तो मिट्टी है। पैसा-बैसा, धूल-मिट्टी, आत्मा खा सकता होगा? पैसे को भोग सकता होगा? यह देखकर राग करे मूढ़ और राग में आनन्द माने, वह मूढ़ है। यह तेरी अनादि काल की दशा है, भाई! उसमें तूने नया क्या किया? यह तो अनादि काल का करता आया है।

अब कहते हैं कि यह आत्मा स्वसंवेदन कर। यह तेरी अपूर्व दशा नयी है, वह भी कैसी है? **स्वसंवेदनसुव्यक्त..** आहाहा! इन परमात्मा महावीर आदि ने पूर्ण स्वरूप को प्राप्त किया। वैसा पूर्ण स्वरूप कैसे प्राप्त हो, वैसा उपदेश दिया, उसे इष्टोपदेश कहा जाता है। उन्होंने कहा कि भाई! स्वसंवेदन। यह कौन कहे? यह कौन इसे दे? यह गुरु से भी मिले, ऐसा नहीं है। यह तो स्वयं से जानकर वेदन करे तो ज्ञात हो, ऐसा है। आहा! इतनी इसे निवृत्ति नहीं, निवृत्ति। काम बहुत और काम बहुत। नटुभाई! आहाहा!

भाई! प्रभु! यहाँ तो भाई! प्रमाण सिद्ध, अन्दर सिद्ध करना है, हों! उसमें लिखा है न? प्रमाण है या कुछ? कि हाँ, प्रमाण है, प्रमाण है (उसके जैसा दूसरा कोई) प्रमाण नहीं

है। सुन न! तुझे खबर नहीं है। चैतन्यज्योत भगवान साक्षात् स्वरूप है। दुनिया के पदार्थों को जानते हुए राग से वेदे, उसे तू ऐसा कहता है कि यह वेदा जाता है, पर वेदा जाता है, यह बात झूठ है। वह तो रागरहित चीज़ है। अन्तर्दृष्टि कर, अनन्त काल में नहीं की। अनन्त काल में तूने यह किया नहीं और यह किये बिना तेरे भव का अन्त कभी आवे, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

भाई! यह सब सेवा-वेवा करके उसमें से कुछ हर्ष-वर्ष मिल जाए, उसमें से मिल जाए, ऐसा कुछ नहीं है। ऐसा यहाँ ना करते हैं, कहते हैं। ऐई.. !....भाई! यहाँ से कुछ मिल जाएगा। वे एक बार कहते थे, दरबार थे न? तुम्हारे भाई थे न तखुभाई (कहते थे) कि इसमें से कुछ धर्मध्यान है और दसवाँ भाग मिलेगा या नहीं? याद है? वे सेठ आये थे न? सर हुकमचन्द। तब भाई बोले थे, तखुभाई बोले थे। परन्तु हमारी यहाँ सब जमीन है न, यहाँ धर्म करे, उसका दसवाँ भाग मिलता है या नहीं? कहा, भाई! धर्म तो बापू! आत्मा से होता है, हों! यह तखुभाई बोले थे। जब अपने प्रवचन मण्डप का किया न... खातमुहूर्त के समय, तब। मैंने कहा, ये बोले अवश्य। मैंने वहीं का वहीं कहा, हों!

भाई! इस आत्मा का भान कहीं बाहर की चीज़ों से हो, ऐसा नहीं है। बाहर के पदार्थ मेरे हैं, यह मानना ही अज्ञान है। तेरा हो, वह तुझसे पृथक् पड़े नहीं और पृथक् पड़े नहीं वह तेरी चीज़ है। अत: तेरी चीज़ तो ज्ञान और आनन्द अन्दर है। प्रकाशमय मूर्ति और अतीन्द्रिय आनन्द, वह तेरी चीज़ है। कभी अनन्त काल में तूने तेरी रुचि और दृष्टि नहीं की। वह भगवान परमात्मा ने पूरी करके पूर्ण पद को प्राप्त हुए, उन्होंने यह उपदेश दिया है।

भाई! प्रभु! तू आत्मा है, मेरी नाथ का है मेरी जाति का है। जाति का समझ में आता है? बनिया हो, एक दशाश्रीमाली बनिया। एक को पाँच हजार की पूँजी हो और एक को चालीस करोड़ की, परन्तु बनिये की जाति तो एक कहलाये न? दरबार! तुम्हारे गरासिया हों। अभी साधारण हों भले पाँच सौ रुपये कमाकर खाता हो और एक होवे पाँच करोड़ का (आसामी), परन्तु कहलायेगा तो गरासिया न? जाति जीमण हो, तब एक पटिये में जीमते हैं या नहीं? वहाँ हरिजन को बैठने देते होंगे?

इसी प्रकार आत्मा को पूर्ण दशा प्राप्त परमात्मा कहते हैं कि मेरी और तेरी जाति एक

जाति है। हमने प्रगट किया, तूने प्रगट नहीं किया, इतना अन्तर है, शक्ति-व्यक्ति का अन्तर है परन्तु तुझमें कुछ हीनता है, ऐसी यदि तू अन्तर में मानेगा तो तुझे आत्मा की खबर नहीं है।

यह आत्मा अपने वेदन से (ज्ञात होता है)। सूक्ष्म बात है, हों! कोई ऐसा माने अब अपने ३२ वाँ (वर्ष) आज लगता है, परिवर्तन को यहाँ ३१ वर्ष पूरे हुए। इस कोने में अन्दर... यह तब चैत्र शुक्ल तेरस को मंगलवार था, मंगलवार को मध्याह्न, ऐसा कहते हैं न? उस दिन सवा बजे, दरबार! सवा बजे हुआ था। आहाहा! भगवान! यह तो ३२ (वाँ वर्ष) लगता है। देखो, सोलह दूनी बत्तीस होते हैं न? आहाहा!

भाई! सन्त-मुनि तुझे प्रथम में प्रथम तेरा आत्मा (जानने को कहते हैं)। भाई! दूसरी चीज़ को तू प्रगट है, हमें प्रत्यक्ष ज्ञात होता है इतना तू दावा करता है, तो भाई! तेरी चीज़ प्रगट है, ऐसा तुझे ज्ञात नहीं होता, ऐसा दावा तू क्यों नहीं करता? नटुभाई! समझ में आया? यह प्रत्यक्ष है न! क्या धूल भी प्रत्यक्ष नहीं। सुन न! यह तो स्त्री, पुत्र, यह सब धूल बाहर की है। यह प्रत्यक्ष है और मौज करते हैं न? धूल की मौज है। वहाँ राग की होली है, वहाँ कहाँ मौज थी? आकुलता का स्वाद लिया करता है। विकल्प का स्वाद राग (लेता है)। उस विकल्प के पीछे ऐसा दावा कभी किया कि यह मेरा आत्मा मुझे प्रत्यक्ष है? पोपटभाई! आहाहा!

स्वसंवेदन से तथा कहे हुए गुणों से योगिजन.. धर्मात्मा.. यह आत्मा ही स्वयं धर्मात्मा हो सकता है और आत्मा ही स्वयं पूर्ण पद को जन्म-मरणरहित कर सकता है। हरगोविन्दभाई! पुस्तक-बुस्तक है या नहीं? अब इसे भी निवृत्ति नहीं। दो तो सही। कभी एक शब्द तो देखे। कुछ का कुछ फिर इसने मुंडाया है। **स्वसंवेदनसुव्यक्त..** हरगोविन्दभाई! है? देखो! पहला शब्द है। देखो! **स्वसंवेदनसुव्यक्त..** है भाई! क्या कहा? ऐसे का ऐसा अनन्त काल से किया ही करता है और कुछ चैन कहाँ आती है? पहले यहाँ से निकले, तब हम आये हैं न इसमें? यह खबर है तुम्हें? ये यहाँ पहले थे, निकलते नहीं थे और किराये पर नहीं देते थे और सहज ही मैं आनेवाला था और ये आये। यह सब खबर है हमें। मौके से ये निकले और मैं आया यहाँ, हों! परन्तु इन दरबारों को तो खबर होगी या नहीं? फिर ये हीराभाई प्रार्थना करने आये मैं धारूका से आया वहाँ... महाराज! मकान खाली

हुआ है मौके से, हों!... खाली किया है। यहाँ तो हमें तो सब खबर है, बत्तीस वर्ष हुए। भाई! यह तो ऐसा अनन्त बार हुआ ही करता है, यह कोई नया नहीं है।

नया तो यह तेरे आत्मा के अन्दर, बापू! एक बार तो पुरुषार्थ को जगा! अनन्त बार तूने दूसरी बातें सिरपच्ची करके मर गया, शुभाशुभपरिणाम-भाव करके पुण्य-पाप बाँधा और पुण्य-पाप बाँधकर स्वर्ग-नरक में भटका। उसमें कहीं आत्मा की शान्ति है नहीं। यहाँ तो स्वसंवेदन से और अपने गुणों से—ज्ञान, दर्शन और आनन्द आदि गुण हैं, शक्तियाँ हैं अन्दर, (उनसे ज्ञात हो ऐसा है) वस्तु है या नहीं?

अभी एक सूखड़ होता है, यह सूखड़ है, देखो न! यह सूखड़ की लकड़ी है। कोमलता है, सुगन्ध है। यह मुम्बई में होती है न? चीनी लोग नहीं बेचते? वह यह है रखने के लिए। लकड़ी खराब न पड़े (इसलिए) देखो कोमल है, भारी है, वह शक्तियाँ है या नहीं इसमें? इसी प्रकार आत्मा में आनन्द है, ज्ञान है, वीर्य है। वीर्य अर्थात् आत्मबल, हों! यह वीर्य अर्थात् शरीर की रेत नहीं। आत्मबल की ताकत अन्दर अनन्त वीर्य है। ऐसी अनन्त शक्ति है कि इसे एक क्षण भी भगवान आत्मा की स्वरूप की महिमा करके, पुण्य-पाप के भाव और उनके फल की महिमा दृष्टि में से उड़ा दे और चैतन्य के माहात्म्य में अन्दर जरा जाये तो कहते हैं कि प्रत्यक्ष ज्ञान से वेदन में आवे, ऐसा सुव्यक्त प्रगट आत्मा है। समझ में आया? कहो, पोपटभाई! परन्तु यह तो लोगों को तो रुपये प्रगट दिखते हैं। धूल में भी नहीं। रुपये के अन्दर गाढ़ दो तो? कितना सुख होता होगा अन्दर? इसके ऊपर रुपये गाढ़े ऊपर, पड़ा हो अन्दर। बहुत सुख होवे तो रुपये सुख देते हैं न तुझे! धूल में भी नहीं, अब सुन न!

यह भगवान आत्मा स्वसंवेदन से प्रगट ज्ञात हो और अत्यन्त लोक तथा अलोक अर्थात् जगत का स्वरूप और खाली भाग, सबको आत्मा जानने की ताकतवाला है। यह खाली है, ऐसा जाना किसने? अमाप.. अमाप.. अमाप.. अमाप.. यह विचार आता है या नहीं? समझ में आया इसमें? कभी विचार किया है लॉजिक से? ऐसे का ऐसे चला जाये अनन्त योजन.. अनन्त योजन.. अनन्त कोस.. अनन्त कोस.. अनन्त कोस.. अनन्त गुणा। अनन्त को अनन्त गुणा वर्ग करके (गुणित करो)। वर्ग-वर्ग समझ में आता है? अनन्त

आँकड़ा हो, उसे इतने अनन्त से अनन्त बार गुणा करना, ऐसे अनन्त चला जाये तो भी फिर क्या ? कहीं पाल होगी ? बाड़ होगी ? भाई ! यह अलोक खाली चीज़ अमाप है। कहीं इसका माप नहीं है। यदि माप होवे तो बाद में क्या ? ऐसी चीज़ को भी यह भगवान जानने की ताकतवाला है, ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया ?

यह अन्दर ज्ञान में कौन लेता है ? देखो ! ख्याल में लेता है। यह माप। यह मापवाली चीज़ जगत है, यह अमाप चीज़ है। दोनों का ज्ञान यह चैतन्यभगवान (करता है)। क्या कहा पहले ? देखो ! **लोक और अलोक को देखने जाननेवाला,..** ज्ञान सब जानता है। किसी का भोगनेवाला नहीं, किसी पर चीज़ को करनेवाला नहीं, परन्तु सब चीज़ों को जाननेवाला आत्मा है। कोई चीज़ जाने बिना रहे, ऐसा आत्मा नहीं है। ऐसा आत्मा का स्वरूप है, उसे आत्मा कहा जाता है। सबको जाननेवाले को आत्मा कहा जाता है। किसी को करनेवाला या राग करनेवाला, वह आत्मा का स्वरूप ही नहीं है। आहाहा ! बहुत सूक्ष्म परन्तु, भाई ! अब यहाँ सुनना पड़ेगा या नहीं ? हरगोविन्दभाई ! ३२-३२ वर्ष से यहाँ, फिर कहीं नया क्या है ? कितने वर्ष हो गये ? ५०-५०, ५२ कितने हुए होंगे ? ५४ हुए, लो ! आहाहा !

कैसा है ? कि **तनुमात्रो** वापस है कितने में ? इस शरीर प्रमाण। तेरा तत्त्व शरीर प्रमाण है। तेरा तत्त्व कहीं ऐसे बाहर में चौड़ा नहीं है। दूसरे का वहाँ, तीसरे का वहाँ, सब शरीर प्रमाण है। इतने में आने पर भी, अमाप ज्ञान को लोकालोक को जानने की ताकतवाला तू है। लोक अर्थात् यह जगत और अलोक अर्थात् खाली। अमाप, अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. सबको जाननेवाला यह चैतन्य है।

जैसे दर्पण सभी चीज़ों को जैसे प्रसिद्ध करके जानता है, वैसे यह चैतन्य दर्पण है। चैतन्य दर्पण में जगत का खाली भाग जानने की ताकत, इतनी ताकतवाला यह है। आहाहा ! शरीर, वाणी, जड़, उसकी पर्याय की क्रिया करने की ताकतवाला नहीं, भाई ! इस जगत के किसी परपदार्थ का काम कर दे, ऐसी ताकतवाला नहीं है, क्योंकि यह चैतन्य ज्योति है, परन्तु सबको जानने की ताकतवाला है। आहाहा ! समझ में आया ? यह आत्मा कितना, कैसा है और कैसे है, उसकी यह बात चलती है। इस आत्मा को इस प्रकार जब

तक अन्दर वेदन में न ले, तब तक इसके जन्म-मरण का अन्त नहीं आयेगा। भटका करेगा धूल में, चार गति में । नरक और निगोद, स्वर्ग और सेठाई, सब भटकने की रीतियाँ हैं।

कहते हैं **लोक और अलोक को देखने जाननेवाला, अत्यन्त अनन्त सुख स्वभाववाला,..** देखो! है न? है या नहीं अन्दर? यह **अत्यंतसौख्यवान..** आहाहा! भाई! तुझमें तो अत्यन्त.. अत्यन्त.. अत्यन्त.. अन्त न आवे ऐसा आनन्द तुझमें है। यह कैसे जँचे? कभी प्रमाण में लिया नहीं। बेहद आनन्द है। एक मिश्री की वह होती है न? क्या कहलाता है तुम्हारे.. ? ...कितनी मिठास! कहते हैं। अब वह तो धूल है, वह तो रजकण। रजकण की अवस्था की उग्रता की मिठास का वह श्वेत पिण्ड है। परमाणु का-रजकण का स्कन्ध है। स्कन्ध कहो या पिण्ड कहो। उस पिण्ड में इतनी मिठास दिखती है तो यह तो आत्मा ज्ञानानन्द आत्मा। कहते हैं कि अनन्त सौख्यवान है। है इसमें? अत्यन्त सौख्य। कैसे जँचे? इसे विश्वास नहीं आता।

दूसरी चीज़ की महिमा कहे तो कि, हाँ भाई! वह बहुत ऊँची, हों! देखो न! अभी यह रॉकेट और क्या कहते हैं सब? वह धूल-धाणी और ऐसे से ऐसे जाये और ऐसे से ऐसे ओहोहो! हो जाए अन्दर। परन्तु उसका जाननेवाला कितना उसका.. ओहो! होता है तुझे कुछ? यह भगवान आत्मा जाननेवाला भी अमाप है और सौख्य भी अत्यन्त है।

दो क्या कहा? भाई! हिम्मतभाई! लोक-अलोक का जाननेवाला, सब इतने में तू पूरा शरीर प्रमाण यहाँ है। जाननेवाला सबका इतने में और आनन्द इतने में, आनन्द तेरा अत्यन्त आनन्द है। आहाहा! यह रजकण अलग, यह देह भिन्न। देह तो भिन्न पड़ती है। दिखती है न! राख होती है, राख होकर वह चला जाता है। मरते हैं, तब ऐसा कहते हैं न कि आत्मा मर गया है, ऐसा कहते हैं कोई? जीव गया, भाई! ऐसा कहते हैं न? क्या गया? जीव गया, थोथा पड़ा रहा। वह जीव गया। डॉक्टर सब ऐसे इकट्ठे हों। नाड़ी हाथ नहीं आती, भाई! पल्स... क्या कहते हैं तुम्हारी? ऐसे हाथ नहीं आती, गये लगते हैं। गया, क्या गया? शरीर गया अन्दर से? शरीर तो यह धूल रही। यह सब उसका आकार पड़ा है, ऐसा का ऐसा। वह चैतन्यमूर्ति अरूपी आनन्दकन्द भगवान, अपनी भूल की हुई, भूल लेकर चला गया। भूल करके चला गया, हों! अनादि से भूल करता है, उस भूल को तोड़ने का

यह भगवान! सुव्यक्त आनन्द है। तुझमें आनन्द है। ऐसा आनन्द दुनिया में कहीं है नहीं, इन्द्र के इन्द्रासन में नहीं, ऐसा आनन्द तुझमें है। ऐसा अत्यन्त आनन्दमय है।

अनन्त सुखस्वभाव, देखो! अत्यन्त और अनन्त शब्द प्रयोग किया है। यह अत्यन्त की व्याख्या की। अन्त नहीं न, इसलिए अत्यन्त अनन्त। परन्तु जिसका स्वभाव आनन्द है, उसे माप क्या? जिसका स्वभाव स्वरूप, स्वत: स्वभाव ऐसा चैतन्य, उसकी शान्ति का रस और आनन्द-उसे हद क्या? हद का कारण क्या? जिसका स्वभाव, उसे माप क्या? ऐसा मापरहित अन्तर में अत्यन्त आनन्द है, उसकी तूने अनन्त काल में एक क्षण भी दृष्टि नहीं की और वह दृष्टि किये बिना आत्मा की प्रतीति नहीं होती। आत्मा की प्रतीति हुए बिना आत्मज्ञान नहीं होता। आत्मज्ञान हुए बिना आत्मा का स्वाद नहीं आता। स्वाद.. स्वाद..। और वह स्वाद कैसा होगा? इस दूधपाक के और सबके स्वाद कहते हैं। यह कहते हैं या नहीं? इस दूधपाक का स्वाद नहीं, हों! दूधपाक तो धूल है, वह तो मिट्टी है, उसका स्वाद आत्मा को आवे, आत्मा तो अरूपी है, वह तो रूपी है। उसे देखकर ऐसा विकल्प उठाता है (कि) यह ठीक है, बस! उस ठीक का वेदन है और प्रतिकूल देखे कि जहर है, यह ठीक नहीं, बस! यह द्वेष का वेदन है। द्वेष करे, अरुचि, उसका वेदन है, उस चीज़ (का वेदन) नहीं। चीज तो जड़ मिट्टी और धूल है। उस वेदन में जो विकार प्रत्यक्ष तुझे ज्ञात होता है, उसकी इसे खबर नहीं कि क्या वेदन होता है और क्या होता है। यह इसने कभी देखा नहीं। लड्डू खाया तो मैंने लड्डू खाया, लड्डू का स्वाद आया। धूल का स्वाद आता नहीं तुझे, सुन तो सही। देखा है? वह तो अरूपी है। उसे रूप कहाँ है? रूप स्पर्श करता है उसे? समझ में आया?

भगवान आत्मा तो रूप, गन्धरहित चीज़ है। उसे ऐसे देखते, ऐसे देखते ठीक-अठीक बस। ठीक-अठीक के विकल्प की राग की, द्वेष की वृत्ति का उसे वेदन है। यह संसार वेदन अनादि काल का है। उस वेदन में से ज्ञान का स्वसंवेदन प्रगट कर। आत्मा का भान हुआ और इस जन्म-मरण का अन्त उसे आया। ऐसा यहाँ आत्मा कहते हैं जन्म-मरण का अन्त लावे और स्वसंवेदन से प्रगट हो, ऐसा आत्मा है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। भाई! यह तू ऐसा है। तुझे ऐसा हो कि अर र! मैं ऐसा हो गया? परन्तु तू ऐसा है, हम तुझे कहते हैं। स्वसंवेदन ज्ञान। तेरे से तू ज्ञात हो, तेरे से तू वेदन में आये, तेरे से तुझे वह प्रत्यक्ष

प्रमाण से विश्वास हो, ऐसा तू है। अब यह इसे जँचता नहीं कि नहीं.. नहीं ऐसा नहीं, ऐसा नहीं, ऐसा नहीं। कभी भी सुना नहीं, विचार किया नहीं। है ? कीरतचन्दभाई! आहाहा!

पैर की खबर नहीं ? देखो न! पैर अब जरा चलता है, अब हिला दो न इसे, लो! जवान शरीर है। तब वे चलते थे न ? तब। पन्द्रह दिन पहले निकले थे न ? वे ऐसे निकलते थे। मैंने कहा, अरे! यह तो कीरतचन्दभाई लगते हैं। मोटर, आठ दिन में घूमने जाते हैं न ? मैंने कहा, बैठ जाओ, बैठ जाओ इसमें। दोनों लोगों को हाथ डालकर चलते थे। उस रविवार को नहीं ? पन्द्रह दिन हुए, पन्द्रह। उस रविवार को। यह रविवार नहीं और उस रविवार को, पन्द्रह दिन हुए आज। देखो! इस शरीर का कर दो, लो! होशियार है न! लड़के को बहुत दबाते हो, लो! ऐसा सुना है, हों! चीख मचावे लड़के को चीख मचावे। ऐसा सुना हो, हमने तो बात सुनी हो। हम कहीं गाँव में बहुत घूमते तो नहीं। बात आवे न, भाई! कि चीख मचावे लड़के को। बाहर निकलने न दे। मैंने कहा, शरीर पर कर दो, लो! शरीर को हिला दो ऐसे ठीक से पैर करके। यह जड़ है, प्रभु! यह जड़ है, भाई! इसे कौन करे ? भगवान! यह तो रजकण है, भाई! यह तो अजीव तत्त्व है। आत्मा इसका अधिकारी नहीं। यहाँ यह सिद्ध करते हैं। नाममात्र कहते हैं। व्यर्थ का अधिकार मानता है। अधिकार वहाँ नहीं है। तेरा अधिकार तो अन्दर ज्ञान के वेदन को प्रगट कर, वह तेरा अधिकार है, ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा!

नित्य,.. है। भगवान आत्मा शरीरप्रमाण नित्य है, त्रिकाल है। या किसी दिन नहीं था और है ? आत्मा कब नहीं होगा, ऐसा बने ? वह तो नित्य है, अनादि-अनन्त है। शस्त्र से छिदता नहीं, भिंदता नहीं। आता है या नहीं ?.. वह छिदता कहाँ है ? वह तो अरूपी है, अखण्डानन्द वस्तु है। शस्त्र उसे स्पर्श नहीं करता, क्या छिदे ? धूल छिदे ? शरीर के टुकड़े-बुकड़े हों, ऐसा कहा जाये मनुष्य को। आत्मा अखण्ड चैतन्य ज्योति है, भाई! उसकी तुझे प्रतीति और अनुभव उस क्षण में कभी किया नहीं। वह अनुभव हो सके, ऐसा उसका अधिकार है परन्तु शरीर आदि दूसरे के काम करना, यह उसमें अधिकार है नहीं। शरीर ही काम करता नहीं। पक्षघात हो जाए, ऐं.. ऐं.. ऐसा हो जाता है। यह हमारे बैठे, देखो न, जैचन्दभाई, लो! ऐसे शरीर देखो तो कैसा लगे और पैर चलते नहीं, ऐसे-ऐसे। क्यों जैचन्दभाई ? परन्तु बापू! भगवान! तुझे खबर नहीं प्रभु! यह तो जड़ चीज़ है, यह अजीव

वस्तु है। ये रजकण-रजकण जगत का रूपी अजीवतत्त्व है। इसकी दशा का पलटना, वह तेरे अधिकार की बात नहीं है परन्तु अज्ञानी मानता है। यह डॉक्टर-बॉक्टर सुधार देते होंगे न? हरगोविन्दभाई! स्त्री को किसलिए मरने दिया? वे लड़के छोटे थे न, समझ में आया? कौन मारे और कौन मरने दे? दरबार! लड़का तो बेचारा छोटा, लड़कियाँ छोटी हैं या नहीं? डॉक्टर होशियार होवे और कर देता है या नहीं? स्त्री का तो किया नहीं तूने। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)